भारतीय कला जगत को समृद्ध करती राजस्थानी लोक कथाएँ व लोक कला

डॉ० रीता सिंह
PDFWM (U.G.C), ललित कला विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ

शोधपत्र का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

डॉ० रीता सिंह,
''*भारतीय कला जगत को समृद्ध करती राजस्थानी लोक कथाएँ व लोक कला*',
Artistic Narration 2017, Vol. VIII, No.1, pp.44 - 51
http://anubooks.com/?page_id=2325

सारांश

लोक जीवन विस्मृति और आत्मसुख का एक मात्र साधन है। अतः इसकी परिलक्षणा का स्वरूप लोक कला है। इस लोक कला का उचित असाधारण एवं असामान्य मान्यताओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतः यह कला का वह सामाजिक स्वरूप होता है कि जिसमें परम्परागत संस्कार और धार्मिक आदर्श सरलता से व्यक्त होते है। लोक कला का मानव जीवन के इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हैं। इसका विकास एवं पतन मानस के साथ ही हुआ है।

जो कला जनमानस से जुड़ा हो, वह लोक कला ही है। जन–मानस की यह कला खासकर हमारे देहात की कला ही समझी गई है। इस कला को सही–सही समझने के लिए हमें अपनी अतीत की संस्कृति में झाँकना पड़ेगा। संस्कृति के विषय में कला विद्वान "डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा" जी का कथन है कि– "संस्कृति व सम्पदा है जो प्रकृति की अनन्त सम्भावनाओं से मानव ने अर्जित की है। कला इसी कमाई गई संपदा की सुन्दर–मधुर निधि है" साधारण शब्दों में लोक–कलाएँ हमारे देहात के जनमानस के तमाम परम्परागत तथा कलात्मक कार्य है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हमारे समाज में विभिन्न रूपों में आज भी जिन्दा है। किसी समय की लोक कला अपने युग की सभ्यता का प्रतीक होती है। लोक कला की परम्परा प्राचीन काल से ही भारत में दिखाई पड़ती है।

इसी प्रकार लोक कथाएँ पौराणिक काल से आधुनिक काल तक, युग–युगान्तर तक समय सीमा को पार करके आज भी नवीन बनी हुई है। इन्हें कोई जाति विशेष या व्यक्ति विशेष नहीं कहता। यह तो जननिधि है जिसे कोई भी कह–सुन सकता है कथा कहने में प्रवीण अपनी वाणी कुशलता से सबको मोहित कर कथा को अत्यधिक प्रभावशाली एवं रोचक बना देते है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से राजस्थान जितना भारतीय सभ्यता का प्रतीक रहा है उतना शायद ही कोई अन्य प्रदेश रहा है। राजस्थान गौरवमयी संस्कृति के पक्ष में त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीर, प्राकृतिक सम्पदा, कलात्मक वैभव, रहन–सहन, वेश–भूषा, बोली, धर्म और दर्शन आदि में बहुत समृद्ध और सम्पन्न रहा है। संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान तथा भावी जीवन का अपने में पूर्ण विकसित रूप है।

प्रस्तावना

पौराणिक काल से अब तक मानव ने अपना समय व्यतीत करने एवं मनोरंजन करने का कोई न कोई साधन सदैव ही खोजा है। संगीत, काव्य, शिकार या चित्रण आदि माध्यमों द्वारा मानव अपना मनोरंजन सदैव से ही करता रहा है। इन्ही सब साधनों में कथा कहना व श्रवण करना एवं जनमानस से जुड़ी कला का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जो प्राचीनकाल से मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है।

भारतीयों का जीवन–दर्शन लोक कल्याण लोक वैभव और लोक चेतना को प्रस्तुत करता है। लोक जीवन विस्मृति और आत्मसुख का एक मात्र साधन है। अतः इसकी परिलक्षणा का स्वरूप लोक कला है। इस लोक कला का उचित असाधारण एवं असामान्य मान्यताओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतः यह कला का वह सामाजिक स्वरूप होता है कि जिसमें परम्परागत संस्कार और धार्मिक आदर्श सरलता से व्यक्त होते है। इस मत से डॉ0 कॉरल सौत भी सहमत है। अतः लोक कला का मानव जीवन के इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हैं। इसका विकास एवं पतन मानस के साथ ही हुआ है।

जो कला जनमानस से जुड़ा हो, वह लोक कला ही है। जन–मानस की यह कला खासकर हमारे देहात की कला ही समझी गई है। इस कला को सही–सही समझने के लिए हमें अपनी अतीत की संस्कृति में झाँकना पड़ेगा। संस्कृति के विषय में कला विद्धान "डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा" जी का कथन है कि– "संस्कृति व सम्पदा है जो प्रकृति की अनन्त सम्भावनाओं से मानव ने अर्जित की है। कला इसी कमाई गई संपदा की सुन्दर–मधुर निधि है" साधारण शब्दों में लोक–कलाएँ हमारे देहात के जनमानस के तमाम परम्परागत तथा कलात्मक कार्य है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हमारे समाज में विभिन्न रूपों में आज भी जिन्दा है। किसी समय की लोक कला अपने युग की सभ्यता का प्रतीक होती है। लोक कला की परम्परा प्राचीन काल से ही भारत में दिखाई पड़ती है।

इसी प्रकार लोक कथाएँ पौराणिक काल से आधुनिक काल तक, युग–युगान्तर तक समय सीमा को पार करके आज भी नवीन बनी हुई है। इन्हें कोई जाति विशेष या व्यक्ति विशेष नहीं कहता। यह तो जननिधि है जिसे कोई भी कह–सुन सकता है कथा कहने में प्रवीण अपनी वाणी कुशलता से सबको मोहित कर कथा को अत्यधिक प्रभावशाली एवं रोचक बना देते है।

राजपूत राज्यों के संयोजन से बना राजपूताना बाद में राजस्थान कहलाया। अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा एवं संवर्धन करने में राजपूतों का इतिहास में एक विशिष्ट स्थान माना जाता है। राजस्थान की लोक संस्कृति विश्व में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अपनी भारतीय संस्कृति में उत्सव, शौर्य, कलाप्रियता, धर्म, श्रृंगार एवं अध्यात्म व्यक्ति को बहुत गहराई तक प्रभावित करते रहे हैं।

राजस्थान राज्य का नाम स्वयं एक सांस्कृतिक एकता का सूचक है। जो युग–युगान्तर से भारतीय परम्परा से जुड़ा हुआ है। राजस्थान के राजवंशी राजाओं ने विद्धानों, कुशल शिल्पियों और ध र्म–धुरन्धरों को आश्रय देकर सम्पूर्ण राजस्थान को सांस्कृतिक केन्द्र बनाया परन्तु सांस्कृतिक परम्परा राजस्थान के धर्म, साहित्य, कला, राजस्थानी नारी, वेषभूशा, लोककथा, त्यौहार आदि से ज्ञात हो जाती है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से राजस्थान जितना भारतीय सभ्यता का प्रतीक रहा है उतना शायद ही कोई अन्य प्रदेश रहा है। राजस्थान गौरवमयी संस्कृति के पक्ष में त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीर, प्राकृतिक सम्पदा, कलात्मक वैभव, रहन–सहन, वेश–भूषा, बोली, धर्म और दर्शन आदि में बहुत समृद्ध और सम्पन्न रहा है। संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान तथा भावी जीवन का अपने में पूर्ण विकसित रूप है। संस्कृति ज्ञान व्यवहार, विश्वास की उन आदर्श पद्धतियों को तथा साधनों की व्यवस्था है जो समय के साथ परिवर्तित होती रहती है और सामाजिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दी जाती है। यह किसी एक व्यक्ति के प्रयत्न का परिणाम नहीं होती अपितु अनगिनत व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्न का परिणाम होती है। सभी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और योग्यतानुसार संस्कृति के निर्माण में सहयोग देते है, और अपनी प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धर्म, दर्शन तथा कलाओं का विकास करके अपनी संस्कृति का निर्माण करते है।

लोक चित्र विशेषकर भारत में पर्व के अवसरों पर दीवारों पर एवं आँगनों में बनाए जाते है। दीवारों पर बने चित्रों को **"थापा"** एवं आँगनों में बने चित्रों को **रंगोली** कहा जाता है। अलग–अलग अवसरों पर अलग–अलग "रंगोली" एवं "थापा" बनाये जाते है, जिनके द्वारा हम भारत की विभिन्न संस्कृतियों, जातियों एवं लोकाचार का पता लगाते है।

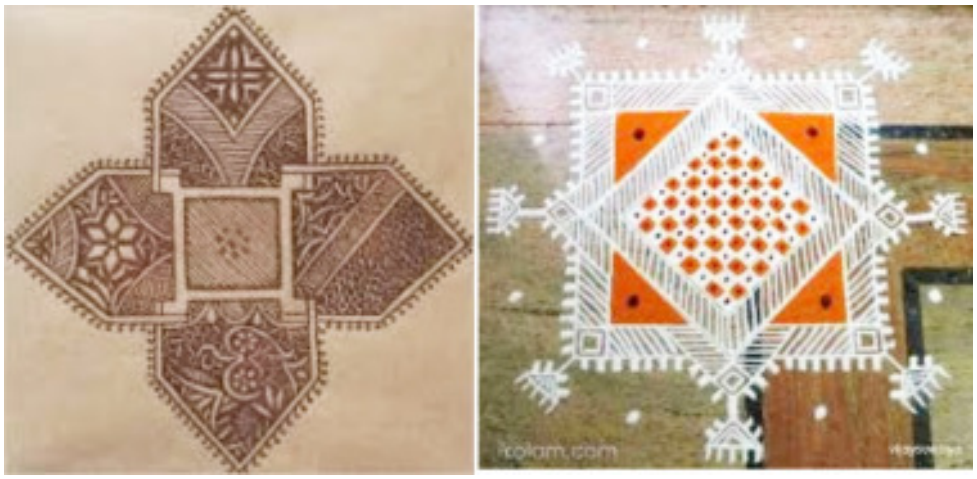

राजस्थान में घरों की दीवारों पर घोड़ा, तलवार, कदली, चक्र, सारस, हाथी, कमल, अंलकरण इत्यादि के चित्रों को बनाने का प्रचलन है। "जनमानस के मनोरंजन के लिए अन्यान्य साधनों के अन्तर्गत पर्व और उत्सव का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज को भविष्य के प्रति आशावान बनाने में पर्वो और उत्सवों तथा त्यौहारों का स्थान उल्लेखनीय है। भारतीय पर्व जीवन के अमृत उत्सव है। पर्व ही जीवन में आनन्द का उल्लास भरते हैं। आलोच्य काव्य में हिंडोला, रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, भैय्यादूज, गोवर्धन पूजा, बसंत पंचमी, होली आदि उत्सवों की चर्चा में ब्रज की रीतियाँ, हास–विलास, क्रीडाएँ, उल्लास–आनन्द,

धर्म, भावनाएँ आदि का पूरा–पूरा समावेश हुआ है। पुष्टिमार्गीय कवियों ने त्यौहारों का वर्णन श्री कृष्ण को माध्यम बनाकर किया हैं इनमें लोक की प्रसन्नता व उमंग छलक कर बाहर तक आ गई है। यही लोककला की छलकती हुई रसधारा राजस्थानी चित्रों के साथ–साथ धर्म व रीति–रिवाजों में भी छलकती है। जिसकी राजस्थानी लोक कला में स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

राजस्थान में स्त्रियों के हाथों एवं पैरों में मेंहदी लगाने की प्रथा है। मेंहदी के साथ–साथ यहाँ पर **गोदने** की प्रथा भी है। जिसमें स्त्रियाँ या पुरुष अपने शारीरिक अंगो (चेहरे, हाथ–पैर) आदि पर नाम (ईश्वर का या अपना), अलंकरण आदि सुई के द्वारा गुदवाते है जो स्थायी रूप से बनता है।

राजस्थान में **"सईया" का पर्व** पन्द्रह दिनों तक चलता है, जिसमें कुँवारी कन्यायें प्रतिदिन भिन्न–भिन्न आकृतियाँ बनाती है, जो लोक कला का ही रूप है जिसके द्वारा बाल्यकाल से ही राजस्थान की नारियों में लोक कला के लिए आस्था जागृत हो जाती है।

राजस्थानी लोक कला एक परम्परा है। यह प्रत्येक परिवार की सम्पत्ति है जिसको धर्म, आचरण, संस्कार और अंधविश्वासों की अमिट और निश्चित परम्परा ने जकड़ रखा है। जिसके कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन करने की स्थिति सरल नहीं है।

मंदना कला जो राजस्थान की धार्मिक लोकला के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध है, देश के अन्य भागो–महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत में इसे **रंगोली तथा कोलम** एवं बिहार एवं बंगाल में इसे अल्पना या अरिपन के नाम से जाना जाता है। मंदना राजस्थान की ग्रामीण महिलाओं की एक पारम्परिक कलात्मक क्षमता तथा मौलिक सोच का परिचायक है। इसके अध्ययन से इसके विभिन्न पहलू है। जैसे–लोगों के जीवन की कलात्मक पहलू परम्परा, धार्मिक विश्वास तथा पारम्परिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। मंदना मूलतः वह कला है जिसे औरते फर्श, जमीन और दीवारों पर विभिन्न पर्वो, धार्मिक अनुष्ठानों, व्रत एवं अन्य उत्सवों में चित्रित करती है। यह राजस्थान की धार्मिक लोककला के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध है।

लोक कला का उद्देश्य जीविकोपार्जन के लिए धन कमाना भी है। यह पक्ष लोक कला के शिल्प से जुड़े हुए कार्यों तक सीमित है जिसके द्वारा लोक कला की बनायी हुई वस्तुओं का बाजारीकरण होता है और उन्हें बेचकर बनाने वाले को आर्थिक लाभ होता है। इस प्रकार की लोकला के उपादान प्रायः घरेलू होते हैं। त्यौहार, उत्सव, संस्कार, मेले और धार्मिक स्थलों पर पूजा–अर्चना की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा मनोविनोद अथवा अलंकरण के प्रयोजन हेतु मिट्टी के खिलौने, मूर्तियाँ, कण्डील, हाथ के बने–कढ़े हुए पंखे, चटाइयाँ, दरियाँ और अंलकरण से सम्बन्धित लकड़ी का सामान जो लोक कला के तत्वों से निर्मित होते है और जिनको लोक कलाकार ही बनाते है, जो परम्परागत पारिवारिक पृष्ठ भूमि में लोक कलाकार के रूप में उभरते है।

राजस्थानी लोक कथाएँ एवं लोक कथा चित्रण एक परम्परा ही नहीं हैं वरन् संस्कृति की अमूल्य धरोहर है क्योंकि लोक कथा में चित्रित परिस्थिति एवं वर्णन का महत्व अधिक होता है। मौखिक परम्पराओं पर आधारित अर्थात् मौखिक रूप से कही जाने वाली असंख्य लोक कथाएँ आदि काल से आज तक जनजीवन को अग्रसर होने का संदेश देती है। इन लोक कथाओं में समाज का चित्र, लोगों के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास सब कुछ समाहित रहता है। लोक कथाएँ ही किसी भी देश या राजस्थान की सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, जीवन से जुड़े परिवर्तन व जन संस्कृति को जितनी उज्जवलता से उजागर करती है उतना अन्य कोई माध्यम नहीं कर सकता। मानस की सहज भावनाओं, आंकाशाओं, आशाओं की ऐसी निष्कपट अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

राजस्थानी लोक कथायें अपने वर्णन विविधता, कथा–वैशिष्ट्य, रोचक कथा शैली एवं कथाओं पर आधारित बने चित्रों के कारण अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस शौर्यपूर्ण,वीर भोग्या भूमि पर वीरता एवं प्रेम कथाओं का सहज ही श्रवण होता है। ये कथाएँ इतनी अधिक रोचक एवं भावपूर्ण होती है कि जब एक बार श्रोता सुनने बैठ जाता है। तो समाप्त करके ही उठता है। क्योंकि इनमें जनतत्व सम्पूर्ण रूप से समाहित रहते है। जो जन को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

ये लोक कथाएँ **कथावाचक**ों को मौखिक कंठस्थ रहती है। ये लोग पढ़े लिखे नहीं होते, परन्तु कथा सुनते है तो किसी ज्ञानी पंडित से कम नहीं लगते। बीच–बीच में दोहे, किसी भक्ति पद का प्रयोग करते थे तथा साथ में संगीत भी होता था। ये कथावाचक आवश्यकतानुसार कथा में परिवर्तिन एवं परिवर्धन करते थे। जब ये कथा सुनाते थे तो श्रोता हुकांरा भरते जिससे कथा की रोचकता के साथ वक्ता का उत्साहवर्धन भी होता है। कहावत भी है– "बात में हुकांरों, फौज में नगारों।

राजस्थानी लोक कथा चित्रण की जो थाती हमें प्राप्त होती है, वह मुख्यतः दो रूपों में हैः प्रथम शास्त्रीय रूप में, दूसरा–लोक चित्रण में। शास्त्रीय तो पेशेवर राज्याश्रित चित्रकार करते रहे किन्तु लोक चित्रण में तो लोक चित्रकार अपनी ख्याति की अपेक्षा किए बिना, बिना अवलम्ब, बिना आश्रय, बिना प्रलोभन व प्रोत्साहन के स्वतंत्र रूप से स्वच्छन्द व सौम्य गति से लोक जीवन के उल्लास का चित्रण करते है।

राजस्थान प्रदेश के प्रचलित स्थानीय लोक कथाओं पर आधारित चित्रण हुआ, इसमें 'मधुमालती, ढोलामारू कृष्णवेली री रूकमणी, फूलजी–फूलमती री वार्ता एवं वीरमदेव पन्ना वार्ता, ढोला मारवाणी –

रा दूहा, पँवार जगदेव री बात आदि सचित्र प्रतियाँ, बड़ी संख्या में मिलती है। रामायण, रासलीला, गजेन्द्र–मोक्ष शिवजी की बारात, शिवपुराण, शिवरहस्य, दुर्गाचरित्र, ढोला–मारू की वृहद् आदि सचित्र प्रतियाँ बड़ी संख्या में मिलती है। जिसमें जनजीवन एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब चित्रित हुआ है। जोधपुर के पाली ठिकानों में चित्रित "मधुमालती" की प्रस्तुत प्रति तिथियुक्त होने के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मधुमालती की इस प्रति में 70 चित्र है। एक इंच हाषिये लाल, काले व नीले रंग से बनाये गये हैं। चटकदार रंगों का प्रयोग लोकशैली में किया गया और आकृतियाँ हलचल भरी बनाई गई है।

राजस्थानी प्रत्येक कृत्य, तीज त्यौहार, उत्सव, युद्ध धर्म, प्रेम आदि सभी के पीछे एक कथा छिपी हुई होती है। इन कहानियों व कथाओं को सुनकर जनसामान्य तृप्त होते है व उसी कथा भाव को अनुभव करते है। यदि वीर कथाएँ है तो उन्हें सुनकर उन वीरों की सहज स्मृति हो जाती है जो अपने देश, ध र्म व वचन रक्षा के लिए बलिदान हो गये। प्रेम कथा में प्रेमी–प्रेमिका के निश्चिल एवं पवित्र प्रेम की स्मृति होती है। जिन्होंने अपने प्रेम के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिया तथा पौराणिक कथाओं में देवी–देवताओं के अलौकिक एवं आश्चर्य पूर्ण कार्य के लिए प्रति श्रोता स्वंय श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता हैं राजस्थानी लोक–कथाओं में राजस्थानी संस्कृति के प्रति धन्य भाव उत्पन्न होता है। इन कथाओं का रस–पान हेतु सम्पूर्ण जनमानस लालायित रहता है व रस–पान कर अपरिमित आनन्द का अनुभव करता है। इसी प्रकार लोक कला में कोई आडम्बर नहीं होता है। उसके निर्माण के तत्व बड़े सरल होते है, उसकी विधि और माध्यम व्यक्तिगत और स्थानीय होते है उसमें विधान शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं होती है। पारिवारिक परम्परा में वह क्रमशः बनाई जाती है और बुजुर्गो से बच्चे बनाते हुए देखकर ही उसको बनाना सीख लेते है। इस प्रकार लोककला एक वह प्रक्रिया है जो स्वतः संचालित व्यवस्था में जीवित रहती है और जिसको पीढ़ी दर पीढ़ी संचालित किया जाता है। राजस्थानी लोक कला एवं राजस्थानी लोक कथाओं का भारतीय कला जगत को मिला यह योगदान भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं की धरोहर है जो आध ुनिकता की इस दौड़ में आज भी अपनी अमिट छाप लिये जीवित है।

सन्दर्भ सूची

- *डा० रामकृष्ण शर्मा – अष्टछापेतर पुष्टिमार्गीय कवि : सिद्धान्त और साहित्य*
- *डॉ० शैलिगृणा सामथ – भारतीय लोककला और जनकला*
- *डॉ० सरन सक्सेना एवं सुधा सरन – कला सिद्धान्त और परम्परा*
- *डॉ० एम.सी. वाकेट – फोक आर्ट*
- *डॉ० कॉरल सौत– फोक आर्ट ऑफ इण्डिया एण्ड विलियर रूट*
- *शेखरचन्द्र जोशी – चित्रकला एवं लोककला : विविध आयाम*
- *डॉ० अन्नपूर्णा शुक्ला – किशनगढ़ चित्रशैली*
- *डॉ० जयसिंह नीरज – राजस्थानी चित्रकला*
- *डॉ० प्रीति अग्रवाल – राजस्थानी चित्रकला में लोक–कथाओं का चित्रण*
- *डा. जयसिंह, नीरज एवं डा. भगवती लाल शर्मा – राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा*

- *"Among the people of India today none are more typically Indian or producer of Indian culture and tradition than the Rajputs. Their heroic deeds in the past have become a living part of that very tadition."Pt. Jawaharlal Nehru- Discovery of India".*
- *ग्रीन के अनुसार–कालूराम शर्मा, प्रकाश व्यास–भारतीय संस्कृति का विकास*
- *शैलेश मटियानी,–अलमोड़ा की लोक कथाएँ*
- *संस्कृति–जनवरी–मार्च, 1979, प्रो0 विशम्बर अरूण,*
- *रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत,–राजस्थानी प्रेमकथाएँ*
- *नारायण सिंह भाटी–परम्परा–राजस्थानी बात संग्रह–जयपुर परम्परा भाग*
- *अगरचन्द नाहटा, –राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा*
- *मधुप्रसाद अग्रवाल, –मारवाड की चित्रकला*
- *फतेह सिंह–सचित्र मधुमालती कथा, जोधपुर*
- *वाचस्पति गैरोला–भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास*